भारतीय वायुसेना के लिए अच्छे विकल्पों का अभाव
No Good Choices for the Indian Air Force

भरत कर्नाड
Bharat Karnad
10.12.09

मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) स्वीपस्टेक्स के लिए भारतीय वायु सेना के पास विकल्पों की कमी नहीं है,लेकिन ये सभी विकल्प बहुत अच्छे नहीं हैं. भारतीय वायु सेना के पास इस नए एयरक्राफ़्ट को खरीदने का कोई भी कारण हो, लेकिन भारत सरकार इस सौदे का राजनैतिक लाभ उठाना चाहती है, द्विपक्षीय संबंधों को और आगे बढ़ाना चाहती है और रणनीतिक भागीदारी को और मज़बूत करना चाहती है. वायुकर्मी गुणवत्ता संबंधी अपेक्षाओं के जो भी नतीजे निकाले जाएँ, वे बहुत स्पष्ट हैं. क्या भारतीय वायु सेना बाज़ार में इसलिए आई है कि वह एक ऐसा एयरक्राफ़्ट प्राप्त करे जिसकी सहायता से विस्तृत क्षेत्रीय ऑपरेशन में लंबी दूरी तक भारी सामग्री ले जाई जा सके, या फिर ऐसा युद्धक विमान लेना चाहती है जिससे स्थानीय हवाई बचाव या हवाई हमले के लिए उसकी वर्तमान क्षमता को बढ़ाया जा सके या फिर अल्पकालीन योजना के तहत यह खरीद भी सीमित पाकिस्तान केंद्रित मिशन का ही एक भाग है ? भले ही यह खरीद सुविचारित हो या अस्पष्ट इतना तो निश्चित है कि इसका आधार प्रौद्योगिकीय या कार्यपरिणाम मूलक न होकर देश के व्यापक रणनीतिक हितों का संवर्धन करना है. जो भी हो इस एयरक्राफ़्ट की उपयोगिता का परीक्षण करने के लिए भारत की विविध स्थितियों में, रेगिस्तान में, सुदूर ऊँचाइयों में और भारी आर्द्रता की स्थितियों में हवाई परीक्षण चल रहा है. यदि 10.4 बिलियन डॉलर की लागत लगाकर 126 मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) का फ़्लीट खरीदकर अधिकतम राजनैतिक लाभ उठाना और भविष्य में और भी अधिक सैनिक साजो-सामान बेचने और पूर्तिकर्ता देश का भारत में राजनैतिक प्रभाव और व्यापार, प्रौद्योगिकी और सैनिक प्रभाव बढ़ाना इसका उद्देश्य है तो बेहतर यही होगा कि भारत सरकार मात्र कुछ हवाई जहाज प्राप्त करने के अलावा और भी बहुत कुछ करने का प्रयास करे.

विडंबना यही है कि नए युद्धक विमान को हासिल करने का प्रयास भारत तब करने जा रहा है जब मानव चालक सहित उन्नत एयरक्राफ़्ट का उपयोग भी खत्म होने जा रहा है और बहुत जल्द ही भारतीय वायु सेना में 30 वर्ष का अपना जीवनकाल समाप्त करने से पहले ही यह मूल्यवान् एयरक्राफ़्ट संग्रहालय की प्रदर्शन सामग्री बनकर रह जाएगा. यदि भारतीय वायु सेना ने थोड़ा बहुत भी अपनी सम्यक् दृष्टि का उपयोग किया होता तो

उन्हें यह बात समझ में आ जाती कि “मानव चालित एयरक्राफ़्ट” का युग अब खत्म होने जा रहा है. यदि यह दृष्टि न भी होती तो भी अमरीकी वायुसेना से यह संकेत तो लिया ही जा सकता था. अमरीकी वायुसेना अब नया निवेश बैलिस्टिक और क्रूज़ मिसाइल के युद्धक पोतों और बहु-उद्देश्यीय ड्रोन या दूरस्थ चालक सहित यानों (RPVs) की प्रौद्योगिकी पर कर रही है. साथ ही अमरीकी वायुसेना चालक सहित युद्धक एयरक्राफ़्ट के साथ सशक्त किंतु छोटी क्षमता भी बनाए रखना चाहती है. परंतु परंपरागत रूप में बीते हुए कल का युद्ध लड़ने वाली सेना को भी सुसज्जित करके अमरीकी वायुसेना अपने-आपको आश्वस्त अनुभव करती है.

सबसे खराब बात तो यह है कि भारतीय जलवायु के समान भारतीय वायुसेना के पास भी अपना युद्ध निदेशालय नहीं है. अपनी विशेषज्ञता के आधार पर वे न तो किसी एयरक्राफ़्ट को डिज़ाइन कर सकते हैं और न ही अपने स्तर पर उसका निर्माण कर सकते हैं. वस्तुतः वे भारतीय एयरक्राफ़्ट की परियोजनाओं का मखौल उड़ाने में विकृत गर्व का अनुभव करते हैं ताकि वे अधिक विकसित और आयातित युद्धपोतों की खरीद जारी रख सकें. उदाहरण के लिए एचएफ़ -24 के अनुवर्ती एयरक्राफ़्ट मरुत युद्धक विमान को, जिसे 1960 के दशक में प्रसिद्ध युद्धकालीन जर्मन फ़ॉक-वुल्फ़े के डिज़ाइनर कुर्त टैंक ने मूल रूप में विकसित किया था, ड्रॉइंग बोर्ड तक पहुँचने ही नहीं दिया गया. भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने देश में विमान उद्योग को मूल रूप में विकसित करने के लिए एक दशक पहले ही टैंक की सेवाएँ प्राप्त कर ली थीं. इसलिए भारत ने ब्रिटिश नैट व जगुआर और रूसी मिग -21, मिग -27 एवं मिग -29 के भारत में ही निर्माण के लिए लाइसेन्स प्राप्त कर लिया था. परंतु पूर्तिकर्ता देशों द्वारा सप्लाई कोड आदि न दिए जाने के कारण वास्तविक रूप में डिज़ाइन से लेकर डिलीवरी तक की क्षमता देश में विकसित नहीं की जा सकी. यह बात इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) के ठेके में प्रौद्योगिकी स्थानांतरण और स्थानीय रूप में इनके निर्माण के लिए आवश्यक लाइसेन्स का भी प्रावधान किया गया है. यही कारण है कि इस सौदे की लागत बहुत अधिक बढ़ गई है और देश को इससे अधिक लाभ भी मिलने वाला नहीं है. यदि मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) को खरीदना ही है तो बेहतर तो यही होगा कि 126 एयरक्राफ़्टों को समूचे रूप में ही एक साथ बने-बनाए रूप में ज्यों का त्यों खरीद लिया जाए ताकि लागत में भारी छूट मिल सके और भारी मात्रा में फालतू पुर्जों का जखीरा भी मिल जाए. इसके अलावा स्थानीय स्तर पर उत्पादन की सुविधाएँ मुहैय्या कराने में जो बेकार का

खर्च होगा उसे भी रोका जा सकेगा और इससे भविष्य में समय रहते ही पुरानी टेक्नोलॉजी को अनायास ही समाप्त भी किया जा सकेगा.

रिकॉर्ड के लिए बोइंग एफ़ /ए-18ई/एफ़ सुपर हॉर्नेट, लॉकहीड मार्टिन एफ़-16 इन ("ब्लॉक 70"), डसॉल्ट का रफ़ेल, योरोपीय कन्सोर्शियम का ईएडी टायफ़ून यूरोफ़ाइटर, साब का ग्रिफ़ेन इन और रूसी मिग-35 आज प्रयोग में आ रहे हैं. हैरानी की बात तो यह है कि पैसे के मूल्य की दृष्टि से सबसे अधिक किफ़ायती सुखोई सू-30 को, जो मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) की माँग को पूरा करने में सक्षम है, विचारार्थ सूची में शामिल ही नहीं किया गया है. भारतीय वायुसेना के ऑर्डर ऑफ़ बैटल में पहले से ही मौजूद सू-30 के विकास के लिेए भारत द्वारा इसका वित्तपोषण 90 के दशक के बीच शुरू हुआ और कारोबार में पैसे की दृष्टि से इसका मूल्य सबसे अधिक किफ़ायती होने के कारण इसे सर्वश्रेष्ठ फ़ाइटर- बॉम्बर माना जाता है. परिणाम की दृष्टि से भी इससे बेहतर केवल एफ़-22 रैप्टर ही हो सकता है. यदि निष्पक्ष रूप में इसका विश्लेषण किया जाए तो रेस में केवल अमेरिकन एयरक्राफ़्ट ही इसका मुकाबला कर सकता है या फिर इससे कुछ भारी पड़ सकता है और यदि इसका क़ॉन्फ़िगरेशन कुछ उन्नत कर दिया जाए तो केवल जॉइन्ट स्ट्राइक फ़ाइटर एफ़-35 ही इसका मुकाबला कर सकता है. यह वही जहाज है जिसे लॉकहीड मार्टिन ने एफ़ -16 के बदले "एक के स्थान पर एक" के आधार पर तैयार करने का वायदा किया था और इसी आधार पर भारत ने इसे खरीदना चाहा था. इन तमाम पहलुओं के बावजूद भारतीय वायुसेना की धारणा है कि सू-30 एमकेआई "कोई अच्छा एयरक्राफ़्ट नहीं है !".

इस एयरक्राफ़्ट के गुण-दोषों पर कितनी भी बहस क्यों न की जाए और पूर्तिकर्ता देशों द्वारा दिए गए अन्य प्रलोभनों को देखते हुए यह संभावना दिखाई नहीं देती कि ग्रिफ़ेन, रैफ़ेल और टायफ़ून के मुकाबले इसे शॉर्टलिस्ट किया जा सकेगा. स्वीडन, फ्रांस और पश्चिमी योरोप के देशों से सौदेबाजी करते हुए भारत को वे तमाम राजनैतिक और रणनीतिक लाभ नहीं मिल सकते जितने कि अमरीका और रूस से सौदेबाजी करते हुए मिल सकते हैं. इसके अलावा भारतीय सशस्त्र सेवाओं का रिकॉर्ड रहा है कि वह पूर्तिकर्ता देश से उन्हीं उपकरणों को खरीदती हैं जिन्हें भारत सरकार पसंद करती है. इसलिए अब लगता यही है कि मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) की खरीद का निर्णय भी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और आपसी विश्वास के आधार पर किया जाएगा. विभिन्न एयरक्राफ़्टों के परीक्षण डेटा का उपयोग तो अंततः आखिरी निर्णय को इन तमाम पहलुओं से अलग करने के लिए किया ही जाएगा.

राजनैतिक और भूराजनीति पर आधारित रणनीतिक पहलू महत्वपूर्ण तो हैं,लेकिन इस हालत में भारत सरकार के लिए यह निर्णय लेना आसान नहीं होगा. यह स्पष्ट ही है कि अमरीकी उपकरणों को खरीदना निश्चय ही फ़ायदे का सौदा होगा. इससे अन्य बातों के अलावा सैनिक सहयोग व्यवस्था के लिए निर्णायक अधिकार और उस पर बल देने का अधिकार भी मिल जाएगा. साथ ही 2005 के रक्षा संबंधी ढाँचे के इस समझौते में दोनों देशों की सैनिक प्रणालियों की इंटर-ऑपरेबिलिटी की परिकल्पना की गई थी ताकि दोनों ही देश महत्वाकांक्षी और तेज़ी से आगे बढ़ते चीन पर लगाम लगा सकें. भारत के साथ रूसी सैनिक सहयोग में भी समान चीनी खतरे को केंद्र में रखकर ही संयुक्त आवश्यकता को प्रतिपादित किया गया है. एफ़-16 या एफ़-18 की खरीद से निश्चय ही रूस को धक्का लगेगा, क्योंकि मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) के निर्णय को वह भारत के साथ अपने दीर्घकालीन अच्छे संबंधों के निर्णायक परीक्षण के रूप में देखता है. गलत विकल्प चुनने के कारण वह भारत के लिए फालतू पुर्जों और सर्विसिंग सपोर्ट की लागत भी बढ़ा सकता है. इससे भारतीय सेना की तैयारी के कई पहलुओं पर बहुत तेज़ी से बुरा असर पड़ेगा. भारतीय सशस्त्र सेनाएँ अभी भी अपनी लगभग 70 प्रतिशत आवश्यकताओं के लिए रूस पर ही निर्भर करती हैं. परंतु भारत के प्रति रूस के बिगड़ते तेवर के कारण कुछ और भी परिणाम हो सकते हैं. अधिक मूल्य वाली अनेक सैन्य प्रौद्योगिकीय सहयोग परियोजनाओं में रूस की भागीदारी में कमी आ सकती है, अन्य उपकरणों की प्राप्ति की लागत बढ़ सकती है और पट्टे पर ली जाने वाली परमाणु शक्ति से चालित हंटर किलर पनडुब्बी अकुला और एयरक्राफ़्ट वाहक *गश्कोव* जैसे ठेके के उपकरणों की डिलीवरी में देरी हो सकती है. इसके अलावा, यह भी हो सकता है कि मास्को गंभीर रूप से 'अपमानित' होकर चीन के साथ मिलकर भारत को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थायी सदस्यता से भी वंचित कर सकता है, जिसके लिए भारत कब से प्रयत्नशील है.

भारत सरकार केवल दो बातों पर ही निर्भर कर सकती हैः अमरीका पर एक विश्वसनीय रणनीतिक भागीदार और सैन्य-सामग्री के पूर्तिकर्ता के रूप में और इस निष्कर्ष पर कि ऐसे रणनीतिक पूर्तिकर्ता के साथ संबंधों के बावजूद भारत की स्वतंत्र सत्ता बनी रह करती है. इस समीकरण में रूस, माल का एक चिर परिचित पूर्तिकर्ता होने के नाते "जाना-पहचाना शैतान" है, जिसे पिछले चार दशकों में भारतीय सेना और नौकरशाही अच्छी तरह पहचान चुकी है. दूसरी ओर अमरीका है, जो अपरिचित माल की तरह है, जिसका आग्रह है कि उसके भागीदार उसके नीति-निर्देशों का पालन करें और उसकी बस यही चिंता रहती है कि उसके ठेके, संधि और दायित्वों का न तो उल्लंघन किया जाए और न ही सैन्य-सामग्री के ग्राहकों के साथ कठोरता और मनमाने ढंग से बर्ताव किया जाए.

अमरीका ने स्वेच्छा से भारत के तारापुर परमाणु बिजली संयंत्र के लिए यूरेनियम के कम संवर्धित ईंधन की पूर्ति की थी. इसका भारत को अच्छा अनुभव है. यदि भारत सरकार अमरीकी एयरक्राफ़्ट का विकल्प चुनती है तो उसे हमेशा ही अमरीका की ओर से चिंता रहेगी, क्योंकि इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि अमरीकी कॉन्ग्रेस पूर्वव्यापी प्रभाव से कानूनों में संशोधन करे जिससे एफ़-16 या एफ़-18 के एयरक्राफ़्ट के लिए आवश्यक फालतू पुर्जों की सपोर्ट पर पाबंदी न लगाई जाए और जिसके कारण भारत के मध्यम दूरी के मल्टी कॉम्बेट एयरक्राफ़्ट (MMRCA) सचमुच ही ज़मीन पर आ सकते हैं. यह संकट विनाशकारी हो सकता है. भारत भारी दुविधा में है और उसके सामने जो विकल्प हैं, वे न तो बहुत अच्छे हैं और न ही बहुत आसान.

भरत कर्नाड नई भारत स्थित नीति अनुसंधान केंद्र में राष्ट्रीय सुरक्षा अध्ययन के अनुसंधान प्रोफेसर हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@gmail.com>